शहीद-ए-आज़म भगतसिंह की गौरवशाली क्रांतिकारी विरासत का अपमान नहीं सहेंगे

सत्यवीर सिंह

सभी पाठकों को विदित ही है, कि फरीदाबाद के थाना एनआईटी पांच नम्बर के पास वाले विख्यात 'शहीद भगतसिंह चौक' का जीर्णोद्धार हुआ और इस बहाने उसका नाम बदलकर **'विस्थापन विभीषिका स्मारक'** हो गया। उस गोल चक्कर में लगभग 10 फुट भराव डला और उसके ऊपर काले रंग की, धातु की बनीं तीन विशालकाय मूर्तियाँ प्रस्थापित हो गईं। आधे भाग में ग्रेनाइट बिछ गया और उसके बीचोंबीच फव्वारा लगने का भी प्रावधान है। स्मारक अभी पूरा भी नहीं हुआ लेकिन अधबने स्मारक के उद्घाटन का काम मुख्यमंत्री मनोहर लाल 12 अगस्त को निबटा गए। पाठकों को ये भी याद होगा कि जो मूर्तियाँ वहाँ प्रस्थापित हुई हैं, वे शहीद-ए-आज़म भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु की सारे देश में लगी मूर्तियों से मेल नहीं खातीं। उन्हें गौर से देखने पर पता चलता है, कि ये मूर्तियाँ 23-24 साल के नौजवानों की नहीं हैं, जैसी की इन अमर शहीद क्रांतिकारियों की उम्र 23 मार्च 1931 को थी, जिस दिन शाम 7.30 बजे उन्हें कायर ब्रिटिश औपनिवेशिक लुटेरों ने लाहौर में फांसी चढ़ा दिया था। ज़ाहिर तौर पर ये मूर्तियाँ उनसे कहीं ज्यादा उम्र के व्यक्तियों की नज़र आती हैं। साथ ही उनके चेहरे-मोहरे की बनावट एक दम अलग नज़र आती हैं। एक मूर्ति तो एक हाथ आगे और एक हाथ घुमावदार तरीक़े से पीछे किए हुए है, जैसे नृत्य की भाव-भंगिमा होती है। कुल मिलाकर ये दृश्य, क्रोध और शर्मिंदगी पैदा करने वाला है।

इस अत्यंत गंभीर और संवेदनशील मामले की असलियत जानने के लिए, फरीदाबाद नगर निगम में कई व्यक्तियों को फोन लगाने के बाद, अधीक्षण अभियंता ओमबीर सिंह से जानकारी मिली कि इस पार्क को उन्होंने नहीं बल्कि **'फरीदाबाद स्मार्ट सिटी निगम'** ने बनाया है। वहाँ संपर्क साधा गया और सम्बंधित कार्यकारी अभियंता अरविन्द शेखावत ने बताया कि ये मूर्तियाँ भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की ही हैं। साथ ही उन्होंने ये भी जानकारी दी, कि वे जल्दी ही वहाँ उनके नाम की पट्टियाँ भी लगवाएँगे। सम्बंधित जानकारी 1 सितम्बर को भेजी गई ई मेल से भी मांगी गई है लेकिन उस मेल का अभी तक कोई जवाब नहीं आया। जब उनसे कहा कि पट्टियाँ लगाने में वक्त लगेगा, जैसा कि आप कह रहे हैं तो ई मेल पर ही बता दीजिए कि आप क्या करने जा रहे हैं। इस बात पर चुप्पी साध ली। बाद में संभलकर जवाब दिया कि सरकारी जवाब ऐसे नहीं दिए जाते। इसके लिए चीफ इंजिनियर और निदेशक स्तर से अनुमति लेनी होगी। ...7 सितम्बर को भी उनसे विनती की गई, लेकिन आज तक कोई भी जानकारी आधिकारिक तौर पर प्राप्त नहीं हुई है

अमर शहीद क्रांतिकारियों का विभाजन की विभीषिका से क्या मतलब?

सान्डर्स हत्या मामले में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को अँगरेज़ अदालत ने कसूरवार मानते हुए, फांसी की सज़ा सुनाई थी। लाहौर जेल में शादमन चौक (अब शहीद भगतसिंह चौक) के नज़दीक फांसी गृह में उन्हें, 24 मार्च 1931, सुबह 8.30 बजे फांसी देने का हुक्म हुआ था लेकिन सारा देश गुस्से से उबलता जा रहा था। शोषक लुटेरे कितने भी हथियारबंद हों, अन्दर से बहुत बुजदिल होते हैं। अँगरेज़ हुकूमत डर गई, कि 23 मार्च की रात कुछ भी हो सकता है। ये भी हो सकता है कि लोग इस जेल पर ही धावा बोल दें। इसलिए अदालती क़ानून के पाखंड की असलियत उजागर करते हुए, तीनों क्रांतिकारियों को, निर्धारित समय से 11 घंटे पहले, 23 मार्च 1931 की शाम 7.30 बजे ही फांसी पर लटका दिया गया। ना सिर्फ़ समय से 11 घंटे पहले, बल्कि सूर्यास्त के बाद फांसी दी गई. ऐसा उस वक़्त तक पहले कभी नहीं हुआ था। ना सिर्फ़, महान क्रांतिकारियों को 23 मार्च की शाम 7.30

बजे उन्हें फांसी पर लटका दिया गया बल्कि उनके मृत शरीर भी उन्हें डराते रहे। हथियार बंद, शासक वर्ग उनके मृत शरीरों का भी सामना नहीं कर पाया। उन्हें उनके परिजनों को नहीं सौंपा गया बल्कि रात में चोरी-छुपे हुसैनीवाला के पास, चोरी-छुपे जब वे उनके पार्थिव शरीरों को जला रहे थे तब लोगों को पता लग गया और अपार जन-समुदाय उमड़ पड़ा। अंग्रेजों के भाड़े के टट्टू दुम दबाकर भागने को मज़बूर हुए। अदालतें और क़ानून, भले निर्धारित दायरे में कितने भी उछल-कूद करते नज़र आएँ, कभी-कभी भले सरकारों को कठघरे में खड़ा करें, भले कई बार आम नागरिक के हित में फैसले भी सुनाएं, लेकिन जैसे ही शासक वर्ग पर कोई गंभीर ख़तरा मंडराता है, तुरंत न्याय को चोला दूर फेंककर, अदालतें नंगे तरीक़े से सत्ताधारी वर्ग की सेवा में हाज़िर हो जाती हैं। वैसे भी राजनीति-शास्त्र हमें ये स्पष्ट रूप से सिखाता ही है, कि न्यायपालिका, विधायिका, प्रशासन और मीडिया, ये सत्ता के चार अभिन्न अंग होते हैं।

तत्कालीन देश, मतलब, आज के भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश की कोई भी सरकार, आज तक इन अमर शहीद क्रांतिकारियों को विभाजन की विभीषिका से नहीं जोड़ पाई, जैसा कि आज की फासिस्ट मोदी सरकार और हरियाणा की भाजपा सरकार, मतलब 'डबल इंजन' की सरकार ने ये हिमाक़त की है। लगता है, शहीद-ए-आज़म के जाने के 91 वर्ष बाद भी सरकार उनके विचारों से भयभीत है। इन क्रांतिकारियों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि आज़ादी आन्दोलन के नेता, एक दिन हिन्दू-मुस्लिम में बंटकर इस तरह एक दूसरे के खून के प्यासे होंगे और अपने-अपने मज़हब के सरमाएदारों के बाज़ार सुरक्षित करने के लिए देश पर खूनी लकीरें खींच देंगे. ऐसे वहशी हत्यारे बन जाएँगे कि मानवता भी शर्मसार हो जाए. विभाजन विभीषिका से भगतसिंह के विचारों को कैसे जोड़ा गया?

हरियाणा सरकार जवाब दो आईये देखें, भगतसिंह के विचारों में ऐसा क्या है कि आज के शासक भी उन्हें बर्दाश्त नहीं कर पाते. काकोरी के अमर शहीदों, राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, रोशन सिंह, अशफाकुल्लाह खां तथा रामप्रसाद बिस्मिल को एक ही दिन, 19 दिसम्बर 1927 को फांसी पर लटकाया गया था. उनकी शहादत पर देश में आक्रोश की वैसी लहर नहीं उठी, जैसी भगतसिंह उम्मीद कर रहे थे. सब कुछ पहले जैसा सामान्य, मानो कुछ हुआ ही ना हो, चलता देखकर वे गुस्से से भर गए. इस बात से झल्लाकर, 'किरती' के जनवरी 1928 के अंक में काकोरी के शहीदों सम्बन्धी, सम्पादकीय में भगतसिंह और भगवती चरण वोहरा ने संयुक्त रूप से देशवासियों को इस तरह लताड़ा था. "इस हालत को सुधारने का एक ही साधन है, इस दुर्दशा को बदलने का एक मात्र ईलाज है, इस दुर्दशा की एक ही दवा है, और वह है आज़ादी. आज़ादी कुर्बानियों के बगैर नहीं मिल सकती. शहीदों की इज्ज़त करने, शहीदों के कारनामे याद करने से, कुरबानी का चाव उमड़ता है. जो कौम शहीदों को शहीद नहीं कह सकती, उसे क्या खाक़ आज़ाद होना है...शहीद वीरो! हम कृतघ्न हैं, हम तुम्हारे किए को नहीं जानते. हम कायर हैं, हम सच-सच नहीं कह सकते. हमें आप माफ़ करो, हमें आप क्षमा दान दो. हमें मौत से भय लगता है, हमारा दिमाग सूली का नाम सुनते ही चक्कर खा जाता है. आप धन्य थे. आपके बड़े जिगर थे कि आपने फांसी को टिच्च समझा. आपने मौत के सामने मजाक किए. पर हम? हमें चमड़ी प्यारी है, हमें तो ज़रा सी तक़लीफ़ ही मौत बनकर दिखने लगती है. आज़ादी! आज़ादी का नाम तो सुनते ही हमें कंपकंपी छिड़ जाती है. हाँ! गुलामी के साथ

हमें प्यार है, गुलामी की ठोकरों से हमें मज़ा आता है. आपकी नस-नस से रग-रग से आज़ादी की पुकार गूंजती थी लेकिन हमारी रग-रग से, हमारी नस-नस से गुलामी की आवाज़ निकलती है. आपका और हमारा क्या मेल? हमें आप क्षमा को, आप हमारे केवल यह प्रेम के अश्रू ही स्वीकार करो. कहो, धन्य हैं, काकोरी के शहीद..!!" आज धार्मिक आडम्बर, बेहूदी-वाह्यात बकवास को स्कूल पाठ्यक्रमों में शामिल किया जा रहा है, सावरकर को बुलबुल के पंखों पर बिठाकर अंडमान निकोबार से हजारों मील की यात्राएं कराई जा रही हैं, तर्कहीन, अवैज्ञानिक गपोड़ों को 'महान संतों का ज्ञान' बताकर परोसा जाने की खुली प्रतियोगिता चल रही है. ऐसे लोगों को भगतसिंह की मूर्तियों से डर लगना स्वाभाविक है. मई 1928 के 'किरती' के अंक में धर्म और भगवान के बारे में लिखे भगतसिंह के विचारों से इन लोगों को डर भला क्यों ना लगे!! "प्रश्न उठता है कि ईश्वर ने यह दुखभरी दुनिया क्यों बनाई? क्या तमाशा देखने के लिए? तब तो वह रोम के क्रूर शहंशाह नीरो से भी अधिक ज़ालिम हुआ. क्या यह उसका चमत्कार है? इस चमत्कारी ईश्वर की क्या आवश्यकता है? बहस लम्बी हो रही है. इसलिए इसे यहीं समाप्त करते हुए इतना ही कहेंगे कि हमेशा से स्वार्थियों ने, पूंजीपतियों ने धर्म को अपनी- अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इस्तेमाल किया है. इतिहास इसका साक्षी है. 'धैर्य धारण करो! अपने कर्मों को देखो!' ऐसे दर्शन ने जो यातनाएं दी हैं, वे सबको मालूम ही हैं."

भगतसिंह के विचारों से नफ़रत करने वाले, किसी एक पार्टी तक ही सीमित नहीं हैं. हर वो दल, जो आम शोषित-पीड़ित वर्ग की एकता को खण्डित करने के लिए धार्मिक आडम्बरों में उलझाकर, मालिक पूंजीपति वर्ग की सेवा करेगा, और शोषण आधारित इस पूंजीवादी व्यवस्था को लोगों के गुस्से से बचाए रखने का उपक्रम करेगा, वो यही करेगा. शहीद-ए-आज़म का, चूँकि, किरदार बहुत बड़ा है, लोग उन्हें इतना सम्मान करते हैं कि अधिकतर नफरतिए उनके ख़िलाफ़ खुल कर बोल नहीं पाते. कभी-कभी वो नफ़रत, लेकिन, बाहर फूट ही पड़ती है. संगरूर से अकाली दल के संसद सदस्य सिमरनजीत सिंह मान की इतनी जुर्रत हो गई कि वो भगतसिंह को आतंकवादी कहे!! भगतसिंह के विचारों को मानने और उन्हें जन-जन तक पहुँचाने का दावा करने वाले, हम जैसों को गंभीरता से विचार करना होगा कि क्या वाक़ई हमने अपना फ़र्ज़ पूरा किया है. आईये देखें, सिख धर्म की राजनीति करने वाले, अकालियों को भगतसिंह से डर क्यों लगता है? जलियांवाला बाग नरसंहार के बाद औपनिवेशिक लुटेरे अंग्रेजों ने पूरी बेशर्मी के साथ, खुल कर हिन्दू-मुस्लिम की राजनीति शुरू की. 1924 में कोहाट में भयंकर सांप्रदायिक दंगे हुए. इस विषय पर बहस छिड़ी. काँग्रेसी नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों के ठेकेदारों से सुलहनामे लिखवाए जबकि क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर से भगतसिंह जून 1928 के किरती में क्या लिखते हैं, आईये देखें. "ऐसी स्थिति में हिंदुस्तान का भविष्य बहुत अंधकारमय नज़र आता है. इन "धर्मों" ने हिंदुस्तान का बेड़ागर्क़ कर दिया है. और अभी पता नहीं कि ये धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे. इन दंगों ने संसार की नज़रों में भारत को बदनाम कर दिया है. और हमने देखा है कि इस अंधविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं. कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपने अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाक़ी सब धर्म के ये नाम लेवा अपने नामलेवा धर्म के रोब को क़ायम रखने के लिए डंडे-लाठियां, तलवारें-छुरे हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर फोड़-फोड़कर मर जाते हैं.....लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है. ग़रीब मेहनतक़श व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूंजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़कर कुछ ना करना चाहिए. संसार के सभी गरीबों के, चाहें वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं. तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो. इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी

दिन तुम्हारी जंजीरें कट जाएंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी." अब आपकी समझ आ गया होगा कि सिमरनजीत सिंह नाम का अकाली भगतसिंह को आतंकवादी क्यों कहता है? जिस तरह आज हम देख रहे हैं, कि न्याय और सच की बात कहने वालों और सरकारी कीर्तन में भाग लेने से इंकार करने वालों को 'अर्बन नक्सल', 'देशद्रोही' कहकर जेलों में डाला जा रहा है, और अपनी बुद्धि-विवेक को गिरवीं रखकर, बिना जांचे-परखे, 'मोदी जी ने किया है तो सोच-समझकर ही किया होगा' कहकर तालियाँ बजाने वालों को ईनामों, बड़े-बड़े ओहदों से नवाज़ा जा रहा है. कुछ ऐसे ही हालात रहे होंगे जब सितम्बर 1928 के 'किरती' के अंक में भगतसिंह ने अपने विचार इस तरह प्रस्तुत किए थे. "जब तक लोग खुलेआम अपने दु:ख-तक़लीफें व्यक्त कर सकते हैं और सरकारी अत्याचारों की पोल खोल सकते हैं, तब तक तो षडयंत्रों की ज़रूरत नहीं पड़ती, लेकिन जब सरकारें खुले आन्दोलनों को कुचलने लगाती हैं और जब- न तड़पने की इज़ाज़त है, न फरियाद की है घुट-घुट के मर जाऊं, यही मर्ज़ी मेरे सैयाद की है.

पर अमल शुरू हो जाता है तो इधर जोशीले और गर्वीले जवान भी बुरी स्थिति में जीना नहीं चाहते. वे सिरों की बाज़ी लगा देते हैं और ऐसे अत्याचारी (शासन) को तोड़ने की सिरतोड़ कोशिशों में व्यस्त हो जाते हैं. जब तक शांतिपूर्ण आन्दोलन में आज़ादी की मांग की छूट रही, कोई षडयंत्र नहीं हुआ, कोई गुप्त आन्दोलन नहीं चल सका, लेकिन ज्यों ही शांतिपूर्ण आन्दोलन को कुचलने के आदेश ज़ारी किए गए, उसी समय गुप्त आन्दोलन शुरू हो गए और षडयंत्रों की तैयारियां होने लगीं. सरकार की सख्ती का दौर शुरू हुआ और काले कानूनों के अधीन सैकड़ों नौजवानों को, जो खुले रूप में काम कर रहे थे, जेलों में नज़रबंद कर दिया गया तो जोशीले नौजवानों को इससे आग लग गई और वे तड़प उठे. बस फिर क्या था? किसी ओर काकोरी षडयंत्र का तो कहीं किसी और षडयंत्र का धुंवा निकलने लगा." क्या इतनी खरी और कड़वी हक़ीक़त को ऐसी सरकार बरदाश्त कर सकती है, जो लोगों को मिले संवैधानिक जनवादी अधिकारों को बेरहमी से अपने पैरों तले रौंदती जा रही है. एक से एक, भयानक काले कानून लाती जा रही है, पत्रकारों को सालों-साल जेलों में डाल रही है, और हर व्यक्ति, यहाँ तक कि खुद अपने मंत्रियों-संत्रियों-जजों तक के मोबाइल में खूंख्वार खुफ़िया 'पेगासस' यंत्र डालती जा रही है? कौन क्या कर रहा है, क्या सोच रहा है; सब जानना चाहती हैं. कहीं कोई षडयंत्र तो नहीं हो रहा, कहीं कोई हमारे, चंद कॉर्पोरेट को सब कुछ अर्पित करने के मंसूबों को भांप तो नहीं रहा, कहीं भंडाफोड़ तो नहीं होने जा रहा!! भगतसिंह बहुत ही संवेदनशील तथा विलक्षण प्रतिभावान व्यक्ति थे. उन्हें बहुत छोटी ज़िन्दगी मिली. उनके पास समय नहीं था. लेकिन उस 23 साल 5 महीने और 26 दिन की ज़िन्दगी में उनके राजनीतिक विचार हर रोज़ परिपक्व होते चले गए. जैसा कि स्वाभाविक था, जीवन के अन्तिम 3 साल तक वे बहुत परिपक्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी के रूप में विकसित हो चुके थे. आज़ादी आन्दोलन की रहनुमाई कर रही कांग्रेस पार्टी के चरित्र और गाँधी के स्वराज तथा अहिंसा के सिद्धांत के बारे में भी उन्हें कोई भ्रम नहीं था. हिंदुस्तान में कैसा राज और संविधान हो, इस विषय पर सर्वदलीय कांफ्रेंस द्वारा बनाई गई 'नेहरू समिति' के बारे में भगतसिंह ने अपने विचार बेबाक रखे. "स्वतंत्रता कभी दान में प्राप्त नहीं होगी. लेने से मिलेगी. शक्ति से हांसिल की जाती है. जब ताक़त थी तब लार्ड रीडिंग गोलमेज कांफ्रेंस के लिए महात्मा गाँधी के पीछे-पीछे फिरता था और जब आन्दोलन दब गया, तो दास और नेहरू बार-बार जोर लगा रहे हैं और किसी ने गोल मेज तो दूर 'स्टूल कांफ्रेंस' भी ना मानी. इसलिए अपना और देश का समय बर्बाद करने से अच्छा है कि मैदान में आकर देश को स्वतंत्रता- संघर्ष के लिए तैयार करना चाहिए. नहीं तो मुंह धोकर तैयार रहें कि आ रहा है- स्वराज का पार्सल! नौजवानों को इन बहकावों में से बचकर चुपचाप अपना काम करते जाना चाहिए."

11, 12, 13 अप्रैल 1928 को अमृतसर में 'नौजवान भारत सभा' के सम्मलेन में घोषणा पत्र प्रस्तुत हुआ था. भगतसिंह इस सभा के महासचिव और भगवती चरण वोहरा प्रचार-सचिव थे. इस घोषणा पत्र में उन्हें अपने विचार और राजनीतिक प्रोग्राम विस्तार से रखने का अवसर मिला. "देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से शुरू होगा- "क्रांति जनता द्वारा, जनता के हित में." दुसरे शब्दों में 98त्न के लिए स्वराज्य. स्वराज्य, जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं बल्कि जनता के लिए भी. यह एक बहुत कठिन काम है. यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत से सुझाव दिए हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उस पर अमल करने का साहस नहीं किया. विस्तार में गए बगैर हम ये दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रुसी नवयुवकों की भांति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गावों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रांति वास्तव में क्या होगी. उन्हें समझाना पड़ेगा कि आने वाली क्रांति का मतलब केवल मालिकों की तबदीली नहीं होगा. उसका अर्थ होगा नई व्यवस्था का जन्म - एक नईराज्य-सत्ता."

भगतसिंह की राजनीतिक परिपक्वता विकसित होती जा रही थी. लेकिन बुर्जुआ पार्टियों के बारे में रणनीतिक नीति क्या हो, इस विषय पर उनकी समझदारी पर डिबेट करने का एक दिलचस्प वाक़या प्रस्तुत है. वे लाला लाजपर राय के विचारों का तीखा विरोध

शेष पेज सात पर